संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन

नीमा *

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति की भूमिका एवं स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। जिसके अन्तर्गत उसके सभी कार्यों, शक्तियों तथा अधिकारों के आधार पर उसकी स्थिति का वर्णन किया गया है। संसदीय प्रणाली एवं अध्यक्षीय प्रणाली में उसकी स्थिति को विभिन्न आधारों के माध्यम से विश्लेषित किया गया है और उनकी तुलना द्वारा भूमिका को बताया गया है। भारत द्वारा इस पद को महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली बनाने हेतु किये गये प्रावधान एवं संशोधन से उपयोगिता स्पष्ट की गई है। साथ ही भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में राष्ट्रपति की भूमिका बदलती परिस्थितियों में किन कारणों से महत्वपूर्ण है, स्पष्टतः बताया है तथा इन बदलते राजनैतिक परिवेश में विभिन्न राष्ट्रपतियों द्वारा निभायी गई अहम भूमिका को गहनता पूर्वक विश्लेषण करके शोध पत्र में वर्णित किया गया है। राष्ट्रपति पद के सृजन तथा उसके शक्तियों एवं अधिकारों के विषय में संविधान सभा में हुए वाद–विवादों के माध्यम से भी उसकी स्थिति को बताने का प्रयास किया गया है। साथ ही अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों में राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के संबंधों को अनुच्छेदों के विश्लेषण के माध्यम से उजागर किया गया है। संविधान द्वारा उसके पद से जुड़े सभी प्रावधानों जैसे – निर्वाचन, निर्वाचन प्रक्रिया, योग्यताएं, कार्यकाल, महाभियोग तथा उसके कार्यों का संक्षिप्त वर्णन करके उसकी स्थिति को इन माध्यमों से स्पष्ट करने का प्रयास शोध–पत्र में किया गया है। इस शोध–पत्र में संवैधानिक संशोधनों एवं विवादों के माध्यम से उसकी स्थिति में पड़ने वाले प्रभावों को भी बताया गया है।

मुख्य बिन्दु: संसदीय प्रणाली, संवैधानिक प्रमुख, आपातकालीन स्थिति, विवेकाधीन शक्तियाँ, वीटो शक्ति, संवैधानिक प्रावधान, संवैधानिक संशोधन।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा ब्रिटिश नमूने पर मंत्रिमण्डलीय शासन पद्धति के 'वेस्टमिनस्टिर प्रतिमान' को अपनाया गया। संविधान निर्मात्री सभा में शासन के संबंध में मतैक्य नहीं था। संविधान सभा में यह प्रश्न अत्यधिक विवादास्पद रहा कि भारत में अध्यक्षीय प्रजातंत्र स्थापित किया जाए या संसदीय प्रजातंत्र। सैय्यद काजी करीमुद्दीन, शिबलाल सक्सैना, जी.एस.गुप्ते और के.टी.शाह आदि ने अध्यक्षात्मक प्रणाली को अपनाने का समर्थन किया, जबकि पं0 नेहरू, सरदार पटेल, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर और के.एम. मुंशी आदि ने संसदात्मक प्रजातंत्र को अपनाने पर बल दिया। काफी वाद–विवाद के पश्चात संविधान सभा के अधिकांशतः सदस्यों ने भारत में संसदीय प्रजातंत्र को उचित मानते हुए उसकी स्थापना की वकालत की। सभा के सदस्यों ने पं0 नेहरू के इस कथन से सहमति प्रकट की वे सरकार के मंत्रिमण्डलीय रूप पर ही बल देना चाहते हैं और वे चाहते हैं कि वास्तविक सत्ता मंत्रिमण्डल तथा विधानमण्डल में निहित रहे न कि राष्ट्रपति में।[1] अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर के शब्दों में, '' ग्रेट ब्रिटिश, डोमिनियन तथा कुछ महाद्वीपीय देशों की संसदीय सरकार और अमेरिका की अध्यक्षीय सरकार के सभी पक्षों व प्रसंगों पर विचार करने के उपरान्त, भारतीय संविधान ने संसदीय सरकार की संस्थाओं को अंगीकृत किया है।[2]

संसदीय व्यवस्था अपनाने पर भी राष्ट्रपति की शक्तियों का विषय संविधान सभा में सर्वाधिक चर्चा का विषय रहा। संविधान सभा में अम्बेडकर सहित एच.वी. कामथ, पी.एस. देशमुख, टी.टी. कृष्णामाचारी का स्पष्ट मत था कि भारतीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति की स्थिति वही है जो ब्रिटेन में सम्राट की है। वस्तुतः संविधान निर्माता राष्ट्रपति को कार्यपालिका के केवल औपचारिक प्रधान की स्थिति देना चाहते थे। इस प्रकार संघीय कार्यपालिका के स्वरूप का निर्धारण सभी प्रकार के मतों पर विचार करके किया गया। संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रपति को संघ का कार्यपलिका अध्यक्ष बनाया, किन्तु उनका आशय भारतीय राष्ट्रपति को अमेरिका के राष्ट्रपति के समान शक्तिशाली बनाना नहीं था। वे भारतीय राष्ट्रपति को वही संवैधानिक स्थिति प्रदान करना चाहते थे जो ब्रिटिश सम्राट की है। अर्थात औपचारिक अथवा संवैधानिक प्रधान की। भारतीय संविधान द्वारा अपनाई गई मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान है और प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यकारी। औपचारिक प्रमुख होने के बावजूद भारतीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति की भूमिका महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। भारतीय राष्ट्रपति न केवल संविधान का संरक्षक है, अपितु संपूर्ण भारत का निर्वाचित प्रतिनिधि भी

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.एस.बी.कैम्पस, नैनीताल

है। वे देश के प्रथम नागरिक होने के साथ ही उसकी एकता, अखण्डता तथा सुदृढ़ता का भी प्रतीक है। भारतीय संविधान एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य का है और राष्ट्रपति का पद सर्वोच्च और संवैधानिक रूप से शाश्वत है। चूंकि भारत में सरकार का स्वरूप संसदीय है, अतः राष्ट्रपति केवल कार्यपालिका प्रधान होता है। मुख्य शक्तियाँ प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमण्डल में निहित होती हैं। अन्य शब्दों में कहें तो राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमण्डल की सहायता व सलाह से करता है। भारत में राष्ट्रपति का पद संविधान के अनुच्छेद 52 द्वारा उपबन्धित है। राष्ट्रपति की स्थिति को लेकर संविधान के लागू होने के पश्चात से ही मतभेद चलता आ रहा है कि राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति क्या है? संविधान सभा में डॉ0 अम्बेडकर ने राष्ट्रपति की स्थिति को बताते हुए कहा है कि ''भारतीय संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की स्थिति वही है, जो ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत सम्राट की है। वह राष्ट्र का प्रमुख होता है, पर कार्यकारी नहीं होता। वह राष्ट्र का प्रतीक है तथा प्रशासन में औपचारिक रूप से सम्मिलित है अथवा एक मुहर के रूप में है जिसके नाम से निर्णय लिये जाते हैं।[3]''

इस प्रकार नेहरू ने भी राष्ट्रपति की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ''हम सरकार के मंत्रिमण्लीय स्वरूप पर जोर देना चाहते हैं कि शक्ति वास्तव में मंत्रालय और विधायिका में रहती है न कि राष्ट्रपति में। साथ ही हम नहीं चाहते हैं कि राष्ट्रपति फ्रांस के राष्ट्रपति की तरह केवल एक प्रमुख व्यक्ति हो। हम नहीं चाहते कि उनके पास कोई वास्तविक शक्ति हो, हमने उनकी स्थिति को अधिकार और गरिमा की स्थिति प्रदान की है।[4]'' इसलिये संविधान सभा द्वारा भारतीय राष्ट्रपति को अमेरिकी राष्ट्रपति एवं ब्रिटिश सम्राट की मिली–जुली स्थिति प्रदान की गई है।

भारतीय राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की सलाह के बिना कोई निर्णय नहीं ले सकता है जैसा कि अनुच्छेद 74 में उपबन्धित है किन्तु राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियाँ अपवाद स्वरूप हैं। लेकिन इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति अपनी स्वेच्छा से निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है जैसे– अमेरिकी राष्ट्रपति किसी भी सचिव को किसी भी समय हटाने की शक्ति रखता है जबकि भारत में राष्ट्रपति को ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है। भारत में राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को अनुच्छेद 53, 74 और 75 के प्रावधानों के माध्यम से समझा जा सकता है। राष्ट्रपति की भूमिका के प्रश्न के उत्तर में एक लम्बे अरसे से यह कहा जाता रहा है कि वह मात्र एक रबर स्टैम्प से अधिक कुछ नहीं है। अब यह धारणा और अधिक मजबूत हो गई है। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, राधाकृष्णन और जाकिर हुसैन के बाद के समय में डॉ0 अब्दुल कलाम को ऐसे राष्ट्रपति के रूप में याद किया जाता है जिन्होंने इस पद की गरिमा में वृद्धि करने के साथ–साथ इसे नये आयाम भी प्रदान किए। अपवाद रूप में ज्ञानी जैल सिंह के कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर राष्ट्रपतियों ने केन्द्र सरकार की हाँ में हाँ मिलाने का कार्य ही किया है जिससे इसकी भूमिका पर प्रश्न उठते रहे हैं। संविधान निर्माण के समय राष्ट्रपति के रूप में ऐसे राष्ट्र प्रमुख की कल्पना की गई थी जो सरकार के कामकाज पर निगाह रख सके और आवश्यकता पड़ने पर उस पर नैतिक दबाव भी बना सके, लेकिन उसके कामकाज की जो व्यवस्था की गई, वह थोड़ी विचित्र है। राष्ट्रपति अपने पास आए किसी विधेयक को असहमति के साथ लौटा सकता है, लेकिन यदि सरकार उनके सुझावों को खारिज कर वही उन्हें फिर से भेज दे तो वह उसे रोक नहीं सकते अर्थात् इस बार उन्हें अपनी सहमति देनी पड़ेगी। सैद्धान्तिक रूप से माना गया है कि वह किसी मसले पर किसी संविधानविद या विधि–विशेषज्ञ से परामर्श ले सकते हैं, लेकिन ऐसा कोई पद संविधान द्वारा सृजित ही नहीं किया गया है जो उन्हें औपचारिक रूप से सलाह दे। शायद यही कारण रहा है कि केन्द्र में सत्ता में रही सभी सरकारों ने राष्ट्रपति के रूप में ऐसे व्यक्ति का निर्वाचन करना पसन्द किया जो उनकी बात माने। यही राष्ट्रपति की गरिमा और भूमिका में गिरावट का मुख्य कारण रहा है। इन सब बातों के बावजूद राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने वाले सभी व्यक्तियों ने इस पद की प्रतिष्ठा एवं गरिमा में अपने अमूल्य योगदान द्वारा वृद्धि भी की है और सभी के समक्ष महत्वपूर्ण उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। इस पद पर व्यक्ति के चयन को धर्म, जाति, लिंग आदि भेद–भावों से दूर रखा गया है। इस पद की सभी अर्हताओं को पूरा कर कोई भी व्यक्ति इस उच्च पद को प्राप्त कर सकता है। भारत में यह पद अमेरिकी राष्ट्रपति की भांति बहुत अधिक सशक्त नहीं है परन्तु ब्रिटिश राष्ट्राध्यक्ष की भांति कमजोर भी नहीं है। भारतीय राष्ट्रपति को कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त हैं जो उसके पद को मजबूती प्रदान करते हैं। इसके साथ ही कुछ विशेष कार्यकारी शक्तियाँ उन्हें अनुच्छेदों 123, 124, 217, 268–279, 309, 310, 311(2), 338, 340, 352, 356, 360 द्वारा दी गई हैं जो उसकी शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण स्थिति को दर्शाता है।[5]

उपरोक्त के आधार पर यह कहना उचित ही होगा कि संसदीय व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय राष्ट्राध्यक्ष एवं ब्रिटिश राष्ट्राध्यक्ष की स्थिति एवं भूमिका समान नहीं है। भारतीय राष्ट्रपति की स्थिति कुछ औपचारिक कार्यों में ब्रिटिश सम्राट के समतुल्य होने के बावजूद अनेक बातों में उनसे भिन्न है। प्रथम, ब्रिटिश सम्राट वंशानुगत अप्रजातान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा नियुक्त किया जाता है जबकि भारत का राष्ट्रपति केन्द्रीय संसद और राज्यों की विधानसभाओं के 'निर्वाचक मण्डल' द्वारा जनतांत्रिक प्रक्रिया से चुना जाता है। द्वितीय, भारत में राष्ट्रपति पर संविधान के उल्लंघन के लिए संसद द्वारा महाभियोग का प्रस्ताव

लाया जा सकता है जबकि ब्रिटिश सम्राट कोई गलती नहीं कर सकता है। तृतीय, ब्रिटेन में सम्राट/सम्राज्ञी प्रतिष्ठित कार्यपालिका अधिकारी होने से दलीय राजनीति से पृथक एवं निष्पक्ष रह सकता है, किन्तु भारत में राष्ट्रपति पद, निर्वाचन एवं महाभियोग दोनों ही दृष्टियों से राजनीतिक है। चतुर्थ, भारत का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की भांति आजीवन नहीं बल्कि 5 वर्ष की अवधि के लिए दलीय आधार पर निर्वाचित होता है। उसके पुनर्निर्वाचन की संभावना होती है। अतः वह दल, लोकमत एवं देश सभी के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी है। वह गलत परामर्श या सलाह को मानने से इंकार कर सकता है। पंचम्, ब्रिटेन में सम्राट के परामर्श का एकमात्र स्त्रोत प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल है, जबकि भारत में इसके साथ राष्ट्रपति के परामर्श स्त्रोत एटार्नी जनरल, लोकसभा एवं राज्यसभा के अध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायालय और राज्यपाल भी हैं।

राष्ट्रपति की स्थिति

भारतीय राष्ट्रपति की स्थिति का निर्धारण एक अत्यंत जटिल प्रश्न है। इसकी स्थिति का वास्तविक निर्धारण हम इस प्रकार से कर सकते हैं।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति – हमारी संवैधानिक रूपरेखा के अनुसार दो संवैधानिक पदाधिकारियों की व्यवस्था की गई है। संविधान के लिखित प्रावधानोनुसार संघ की कार्यकारिणी शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वही इस शक्ति का स्त्रोत है तथापि अनुच्छेद 74 व 75 की संवैधानिक व्यवस्थाएँ यही प्रस्तावित करती हैं कि राष्ट्रपति व्यवहार में संवैधानिक अध्यक्ष है, वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद में निहित है। राष्ट्रपति भारतीय गणतंत्र का प्रधान और औपचारिक कार्यपालक है और शासन के मुखिया के रूप में नीतियों के निर्माण और सफल क्रियान्वयन के अन्तिम रूप में उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिमण्डल का है। राष्ट्रपति को राष्ट्र का प्रतीक होने के कारण एक महत्वपूर्ण संवैधानिक भूमिका निभानी होती है, परन्तु देश के वास्तविक शासन में उसके ऊपर कोई विशेष दायित्व नहीं है। संविधान निर्माता इस विषय पर स्पष्ट थे कि सरकार की शक्तियों का प्रयोग करने वाली दो समानान्तर सत्ताएं साथ–साथ चलेंगी। दोनों संवैधानिक पदाधिकारी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री संवैधानिक व्यवहार एवं अनुशासन के निश्चित नियमों के अधीन हैं और दोनों के परस्पर अधिकार एवं उत्तरदायित्व हैं।

राष्ट्रपति की स्थिति के विषय में संविधान – सभा के वाद–विवाद में प्रत्येक बार राज्याध्यक्ष के संविधानिक गुणों पर ही बल दिया गया। संविधान सभा के कार्यकाल के अंतिम दिन और बाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि ''संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण राष्ट्रपति मंत्रियों द्वारा दिए गए परामर्श को मानने के लिए बाध्य होगा, किन्तु फिर भी यह आशा की जाती है कि जैसे ब्रिटिश सम्राट हमेशा अपने मन्त्रियों की सलाह को मानता है, वैसी ही प्रथा इस देश में स्थापित हो जाएगी और राष्ट्रपति केवल नाममात्र का शासक रहेगा।[6] मूल संविधानानुसार राष्ट्रपति केवल व्यावहारिक दृष्टि से मंत्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य था। 42वें संवैधानिक संशोधन से पहले संवैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति प्रमुख था, लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से मंत्रिपरिषद प्रमुख थी। दोनों का वास्तविक संबंध वस्तुतः संविधान की किसी व्यवस्था पर आधारित न होकर परम्परा पर निर्भर था। 42वें संवैधानिक संशोधन ने इस दुविधापूर्ण स्थिति को समाप्त करके राष्ट्रपति की स्थिति मात्र देश के संवैधानिक अध्यक्ष की बना दी और शासन का वास्तविक कार्य पूरी तरह से मंत्रिपरिषद् के पास आ जाने से वह सर्वेसर्वा हो गयी। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया कि ''मंत्रिपरिषद की सलाह या परामर्श मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है।'' इससे संविधान के मौलिक अनुच्छेद 74 के स्थान पर ये शब्द रखे गए –

''राष्ट्रपति को अपनी सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।[7]''

42वें संशोधन की इस व्यवस्था का भी एक दोषपूर्ण पक्ष यह था कि ऐसी दशा में प्रत्येक अवस्था में मंत्रिपरिषद का परामर्श मानने पर बाध्य होने के कारण राष्ट्रपति की स्थिति एक रबर की मोहर जैसी बन गई और वह 'संविधान के पालन, संरक्षण एवं प्रतिरक्षण तथा भारत की जनता की सेवा' संबंधी अपने उस कर्त्तव्य के पालन के संबंध में अपनी बुद्धि से कुछ करने में सक्षम नहीं होगा, जिसके लिये उसने पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ ली है। इस आलोचना को पूर्णतया महत्वहीन नहीं कहा जा सकता तथा राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद के हाथों की कठपुतली या रबर स्टैम्प बना देने को उचित कहना गलत होगा। इस प्रकार 42वें संवैधानिक संशोधन, 1976 ने राष्ट्रपति की भूमिका को नाममात्र के कार्याधिकारी तक ही सीमित बना दिया। उसके लिए स्वतंत्र कार्य करने की कोई गुजांइश नहीं थी। उसे अपने मंत्रियों की इच्छानुसार की कार्य करना होता था। यही कारण था कि स्थिति का निराकरण करने का प्रयत्न संविधान के 44वें संवैधानिक संशोधन, 1978 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 74 में यह 'परन्तु' जोड़कर किया गया कि ''राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद से जो परामर्श प्राप्त होगा, उसके संबंध में राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह मंत्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद से राष्ट्रपति को जो परामर्श प्राप्त होगा, राष्ट्रपति उस परामर्श के अनुसार ही कार्य करेंगे।'' इसका स्पष्ट अर्थ है

कि पुनर्विचार में भी यदि मंत्रिपरिषद मूल मंत्रणा में कोई परिवर्तन नहीं करती है तो उसे स्वीकारना राष्ट्रपति के लिए आवश्यक होगा। इस प्रकार ये नवीनतम व्यवस्था ने भी राष्ट्रपति को संवैधानिक राज्याध्यक्ष ही बनाया। किन्तु, हाँ असाधारण परिस्थितियों में उसे 'स्वविवेक' के प्रयोग से वंचित नहीं करती। वर्तमान में यही राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति है। वह हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है उसकी कार्य–शक्ति विशाल है तथा अनेक अवसरों पर उसे अपने विवेक से कार्य करने के लिए प्रेरित होना पड़ता है, क्योंकि उस पर यह संवैधानिक दायित्व अधिरोपित किया गया है कि जहाँ कहीं संविधान के उपबंधों तथा संविधान में अन्तर्निहित भावनाओं का अति उल्लंघन होता है वहाँ वह अपने विवेक से काम लें।[8]

वास्तविक स्थिति – भारतीय राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का निर्धारण एक विवादास्पद प्रश्न है। राष्ट्रपति की स्थिति के संबंध में संविधान लागू होने से पूर्व ही विवाद प्रारम्भ हो गया था। भारतीय संविधान निर्माण समिति के सदस्यों में इस गणतंत्र के मुखिया की स्थिति और शक्तियों पर मतैक्य नहीं था। वास्तव में स्पष्ट रूप से यह कोई नहीं जानता था कि संविधान को अन्तिम रूप में ग्रहण करने पर राष्ट्रपति की स्थिति क्या होगी।[9] संविधान निर्माता यद्यपि उसे एक संवैधानिक प्रधान के गौरवपूर्ण पद से विभूषित करना चाहते थे, लेकिन स्पष्ट शब्दों में उल्लेख नहीं करने के कारण स्थिति संदेहात्मक हो गई है। राष्ट्रपति की भूमिका, स्थिति और शक्तियों का विषय संविधान–निर्माताओं, संवैधानिक विधिवेत्ताओं, बुद्धिजीवियों और वकीलों एवं विद्वानों में वाद विवाद का प्रश्न रहा है, क्योंकि सिद्धान्त एवं व्यवहार में बहुत गहरा अन्तर है। जिस कारण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं उत्पन्न हुई जो कि इस प्रकार हैं –

(1) प्रथम विचारधारा के अनुसार जिसमें संविधान सभा के विचार और बहुत से विद्वान शामिल हैं, का तर्क है कि भारतीय राष्ट्रपति केवल संवैधानिक या नाममात्र का राज्य का मुखिया है। पं0 नेहरू का कहना था कि ''हम मंत्रिमण्डलात्मक शासन व्यवस्था अपनाना चाहते हैं जिसमें राष्ट्रपति के पास वास्तविक शक्ति नहीं होती और उसकी स्थिति महान अधिकार और प्रतिष्ठा की है।'' प्रारूप समिति के अध्यक्ष अम्बेडकर ने भी उन्हीं के समान विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष है। वह न तो मंत्रियों के परामर्श के सिवा और न ही उनके परामर्श के विरूद्ध कुछ कर सकता है। उसकी स्थिति वही है जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट की है।'' सभा के अन्य सदस्य के हनुमथैया का तर्क था कि ''इस संविधान में राष्ट्रपति को राज्य करने का अधिकार दिया गया है, शासन करने का नहीं। भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट के समान है।'' ए.के.अय्यर भी अम्बेडकर के विचार से सहमत हैं कि ''एक राष्ट्रपति जो मंत्रिपरिषद के परामर्श की परवाह नहीं करता, वह वास्तव में संसद की इच्छा का उल्लंघन करता है, जिसके लिए उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है।'' उन्होंने अपने पत्रों के द्वारा 20 सितम्बर और 8 अक्टूबर, 1951 को नेहरू को संकेत करते हुए कहा था कि ''यह बिल्कुल स्पष्ट है कि राष्ट्रपति की स्थिति इग्लैण्ड के संवैधानिक मुखिया की तरह है तथा ऐसा कोई कार्य नहीं है जो वह अपने मंत्रियों की सलाह के बिना कर सके। अनुच्छेद 74 अपने चरित्र में संपूर्णता लिए हुए है इसलिए यह राष्ट्रपति के लिए संवैधानिक रूप से अनुचित होगा, यदि वह अपने मंत्रियों से परामर्श नहीं लेता या उसके द्वारा परामर्श के आधार पर कार्य नहीं करता।'' इसके अतिरिक्त, बहुत से संवैधानिक विशेषज्ञों और विद्वानों का तर्क है कि भारतीय राष्ट्रपति संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करता है। भारतीय संविधान के सुप्रसिद्ध टीकाकार डी.डी.बसु, विद्वान के.सी.मारकंडन, प्रसिद्ध विदेशी लेखक ग्रेनविल आस्टिन आदि सभी ने बलपूर्वक तर्क दिया है कि भारतीय राष्ट्रपति केवल एक संवैधानिक मुखिया है।[10]

इस प्रकार, संविधान सभा के वाद–विवाद पर अत्यधिक विश्वास करते हुए कुछ विद्वान यह यकीन करते हैं कि भारत के राष्ट्रपति के पास वही शक्ति हैं जो बेजहॉट ने ब्रिटिश सम्राट के लिए बताई हैं – ''परामर्श लिए जाने का अधिकार, प्रोत्साहन देने का अधिकार और चेतावनी देने का अधिकार।'' उच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों जैसे– रामजवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य मामला, 1970 में बैंक राष्ट्रीयकरण मामला, यू.एन.राव बनाम इन्दिरा गांधी मामला तथा 1974 में शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य आदि में इस स्थिति को मान्यता प्रदान की है कि राष्ट्रपति एक संवैधानिक अध्यक्ष है और उसके लिए अनिवार्य है कि वह मंत्रिपरिषद की सलाह से काम करे। न्यायामूर्ति ए.एन.राय का भी अभिमत है कि ''हमारा संविधान सामान्य रूप में संघ और राज्य दोनों के लिए ब्रिटिश प्रणाली की संसदीय अथवा मंत्रिमण्डलीय सरकार का निर्माण करता है। इस प्रणाली में राष्ट्रपति संघ का संवैधानिक या औपचारिक मुखिया है और वह अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सहायता और परामर्श के आधार पर ही करता है।''[11]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रपति के पास नाममात्र की शक्तियाँ होंगी जबकि प्रधानमंत्री के पास शासन की वास्तविक शक्तियाँ रहेंगी। राष्ट्रपति अपने सभी कार्य मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार करने के लिए बाध्य है। अतः वह ब्रिटिश सम्राट की भाँति एक संवैधानिक प्रधान है।

(2) द्वितीय विचारधारा का तर्क है कि भारतीय राष्ट्रपति केवल नाममात्र या 'गौरवपूर्ण शून्य' या 'रबर स्टैम्प राष्ट्रपति' अथवा

शक्तिहीन राष्ट्रपति नहीं है। इसका समर्थन के.एम.मुशी, पी.बी.मुखर्जी, के.वी.राव, ग्लैडहिल, बी.आर.कृष्णा अय्यर तथा दूसरे बहुत से विद्वान करते हैं। यह कहना सर्वथा अनुचित है कि संविधान समिति की इच्छा राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष मात्र बनाना थी। अगर समिति के सदस्यों के वक्तव्यों को ही आधार मानकर चला जाए तो ऐसे वक्तव्य भी उपलब्ध है जो राष्ट्रपति को केवल नाममात्र का ही अध्यक्ष नहीं बनाना चाहते थे। संविधान सभा के अध्यक्ष ने भी कहा था कि राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों की सहायता और सलाह पर काम करने की बात को परम्पराओं से शक्ति प्राप्त होगी, क्योंकि संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिससे हर मामले में राष्ट्रपति के लिए अपने मंत्रियों की सलाह मानना आवश्यक हो। के.एम.मुंशी ने भी अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि ''राष्ट्रपति एक नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है, बल्कि देश की एकता, संविधान की रक्षा तथा राजनीतिक अराजकता से सुरक्षा के लिये संविधान द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। वह राज्य का स्वतंत्र निकाय है जो सम्पूर्ण संघ का प्रतिनिधित्व करता है तथा स्वतंत्र शक्तियों का प्रयोग करता है। वे कृत्य एवं उत्तरदायित्व जिनके प्रति राष्ट्रपति प्रतिबद्ध है वे उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और संघ के किसी अन्य मंत्री के कर्त्तव्यों व जिम्मेदारियों से भिन्न एवं श्रेष्ठतर है।''[12] इसी प्रकार ग्लैडहिल ने संविधान के अन्तर्गत दिए गए प्रावधानों के आधार पर राष्ट्रपति को एक तानाशाह राष्ट्रपति के रूप में व्यक्त किया। वही डी.एन.बनर्जी ने कहा कि राष्ट्रपति एक शक्तिहीन अथवा अस्तित्वहीन वस्तु नहीं है। बी.एन.राव ने संकेत किया है कि किसी विशेष अवसर पर यदि राष्ट्रपति मंत्रिमण्डलीय परामर्श के अलावा कार्य करता है तो कार्य की वैधता को इस आधार पर न्यायालय में जाँचा नहीं जा सकता।

सर्वोच्च न्यायालय ने शमशेर सिंह विवाद में निर्णय दिया कि संसद भंग करने के विषय में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह मानने के लिये बाध्य नहीं है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पी.बी.मुखर्जी, आइवर जेनिंग, एच.एम.जैन, वी. एन.श्रीवास्तव, वी.जी.रामचन्द्रन, संवैधानिक विशेषज्ञ एच.एम.सीरवई आदि सभी ने स्वतंत्र राष्ट्रपति की धारणा को स्वीकार करते हुए उसका समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ मामले ऐसे भी हैं जिनमें सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने स्वयं ही राष्ट्रपति की सक्रियता के स्वायत दायरे के अस्तित्व को स्वीकार किया है। इस प्रकार 1964 में जयन्तीलाल अमृतलाल बनाम एफ.ए.राणा मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संघ के कार्यपालिका कार्यों एवं राष्ट्रपति के कार्यों के बीच अन्तर करते हुए राष्ट्रपति की सक्रियता के एक स्वायत क्षेत्र की पहचान की है। 1968 में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने राव वीरेन्द्र सिंह बनाम भारतीय संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय के जयन्तीलाल अमृतलाल मामले में दिए गए निर्णय को आधार मानकर अपना फैसला सुनाते हुए कहा कि राष्ट्रपति शासन लागू करने की उद्घोषणा की शक्ति राष्ट्रपति की निजी शक्तियों की श्रेणी में आती है और परिणामस्वरूप हरियाणा में राष्ट्रपति शासन लागू करने की उद्घोषणा के अध्यादेश में मंत्रिपरिषद के परामर्श का उल्लेख करना जरूरी नहीं है। 1971 के एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपनी राय दी कि ''अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत अध्यादेश जारी करने की शक्ति, अनुच्छेद 268 से 279 के प्रावधानों को आपातकाल के दौरान स्थगित करने की शक्ति, अनुच्छेद 256 के अंतर्गत राज्यों में संवैधानिक मशीनरी की असफलता घोषित करने, अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात की घोषणा करने, अनुच्छेद 309 के अंतर्गत संघ के मामलों से संबंधित सेवाओं तथा पदों पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की भर्ती तथा सेवा शर्तों से संबंधित नियम बनाने आदि की शक्तियाँ वास्तव में संविधान द्वारा राष्ट्रपति में निहित की गई है तथा इन्हें अनुच्छेद 258(1) के तहत किसी अन्य सत्ता या निकाय को प्रत्यायोजित या हस्तांतरित नहीं किया जा सकता।'' इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक और मामले में राष्ट्रपति की अनुच्छेद 217(3) के अंतर्गत अर्द्धन्यायिक शक्ति का वर्णन करते हुए उसकी स्थिति को बताया है।[13]

इस प्रकार उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि भारतीय संघ के राष्ट्रपति की स्थिति एवं शक्तियों के संबंध में विधिवेत्ताओं, कानूनी पण्डितों तथा शिक्षाविदों के बीच कोई एक राय नहीं बन पाई है। अपनी निजी शैली और भूमिका को ग्रहण करने में राष्ट्रपति भवन के पदाधिकारियों को बहुत से तत्वों और विचारों ने प्रभावित किया। व्यक्तित्व का तत्व, प्रधानमंत्री के साथ समीकरण, प्रधानमंत्री की सरकार एवं पार्टी में स्थिति तथा राजनीतिक परिस्थितियों ने निश्चित रूप से पूर्व राष्ट्रपतियों की कार्यशैलियों को प्रभावित किया।

राष्ट्रपति पद का महत्व

भारत के राष्ट्रपति की स्थिति मात्र एक औपचारिक प्रधान की होने और वास्तविक शक्ति कार्यपालिका प्रधान अर्थात् प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमण्डल में निहित होने के कारण यह सर्वोच्च पद महत्वहीन समझा गया और यहां तक कहा गया कि यदि इस पद को समाप्त भी कर दिया जाए तो इससे राजनैतिक व्यवस्था में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन वास्तव में यह विचार दोषपूर्ण व भ्रामक है, क्योंकि भारत द्वारा जिस संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है उसमें राष्ट्रपति पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस व्यवस्था में वह राष्ट्र का प्रतीक एवं लोकतंत्र का प्रहरी होता है। राष्ट्र के समस्त कार्यों का संचालन उसी के नाम से होता है। दूसरे देशों से संधि, करार सभी राष्ट्रपति के नाम से होते हैं न कि प्रधानमंत्री। सामान्य परिस्थितियों

में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान मात्र है। लेकिन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में इसके द्वारा लोकतंत्र के रक्षक और प्रहरी के रूप में कार्य किया जा सकता है। मंत्रिमण्डल के पतन अथवा त्यागपत्र और दूसरे मंत्रिमण्डल के निर्माण के बीच समय लग सकता है तथा इसे ही राजनीतिक दृष्टि से संक्रमणकाल कहा जाता है। ऐसी समस्त परिस्थितियों में राष्ट्रपति ही इस बात का निर्णय करता है कि स्थायी मंत्रिमण्डल का निर्माण किसके नेतृत्व में हो सकेगा और इस दृष्टि से संक्रमणकाल में देश के अंतर्गत व्यवस्था और स्थायित्व बनाये रखने का कार्य भी राष्ट्रपति द्वारा ही किया जाता है। संकट काल में यदि मंत्रिमण्डल राष्ट्रीय हित के लिये आवश्यक कदम उठाने में असमर्थ रहता है तो राष्ट्रपति उसे ऐसा करने के लिये बाध्य कर सकता है। वह राष्ट्र का प्रथम नागरिक एवं प्रतीक है और संकटकाल में दलगत राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने का भार भी उसी पर है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्रपति ही भारत का प्रतिनिधित्व करता है।[14]

इस प्रकार स्पष्ट होता है राष्ट्रपति पद को अनुपयोगी तथा महत्वहीन समझना एक बड़ी भूल है क्योंकि वह लोकतंत्र का एक मजबूत स्तम्भ है जिसके बिना लोकतंत्र की कल्पना करना मात्र एक भ्रम होगा। संसदीय व्यवस्था में यह सर्वोच्च पद अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है और इस व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए संतुलन प्रदान करता है।

निष्कर्ष

भारतीय संसदात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति की भूमिका अर्थहीन न होकर महत्वपूर्ण है। वह ब्रिटिश सम्राट के समान नाममात्र का प्रधान नहीं है क्योंकि उसे संविधान द्वारा विशेष एवं महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। भारत में राष्ट्रपति की स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति की भांति न ही अधिक शक्तिशाली है जिससे वह तानाशाह या निरंकुश बन जाए। इसके लिये संविधान द्वारा ही उस पर अंकुश लगाया गया है। विशेष परिस्थितियों में वह प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद पर नियंत्रण रखने का कार्य भी करता है। जब किसी कारणों से सरकार को एक कामचलाऊ सरकार की स्थिति प्राप्त हो तो राष्ट्रपति उस सरकार को नीतिगत निर्णय लेने से रोक सकता है। ऐसा कार्य 1979 में नीलम रेड्डी, 1991 में वेंकटरमण और 1996 में शंकरदयाल शर्मा राष्ट्रपति के रूप में कर चुके हैं। इस संबंध में 1997 एवं 1998 के उदाहरण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जब राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने 1997 में उत्तर प्रदेश तथा 1998 में बिहार में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा राष्ट्रपति शासन की अनुशंसा के परामर्श को 44वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर पुनर्विचार के लिये लौटा दिया। इस प्रकार राष्ट्रपति ने ''असाधारण वस्तुनिष्ठता और परम ईमानदारी का परिचय'' देकर संविधान के सच्चे संरक्षक की भूमिका का उदाहरण ही प्रस्तुत नहीं किया अपितु स्पष्ट शब्दों में यह भी बता दिया कि वे रबर स्टैम्प राष्ट्रपति की भूमिका का अनुसरण नहीं करेंगे। राष्ट्रपति की भूमिका, उसकी वास्तविक स्थिति और उसके पद के महत्व के संबंध में राष्ट्रपति वेंकटरमण का यह विचार नितान्त उचित है ''राष्ट्रपति का महत्व आपातकालीन प्रकाश–व्यवस्था की भांति है, संकट की स्थिति में इसकी भूमिका स्वतः प्रारम्भ हो जाती है और संकट समाप्त होने पर इसकी भूमिका स्वतः समाप्त भी हो जाती है।''[15] उपरोक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रपति भारतीय राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत का राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष है। राष्ट्रपति का पद गरिमामय एवं महत्वपूर्ण है जो भारत की संसदीय व्यवस्था को आधार प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. कंस्टिट्युअन्ट असेम्बली डिबेटस, वॉल्यूम, iv, पृ0 580
2. कंस्टिट्युअन्ट असेम्बली डिबेटस, वॉल्यूम , iv, पृ0 896
3. Mishra, R.N., The President of the Indian Republic, VORA & Co. Publishers Pvt. Ltd., Bombay, 1985, P.-206
4. Nirmal, Anjali, The Indian President, Pointer Publishers, Jaipur, 1997, P.-164
5. Siwach, J.R., The Indian Presidency, Hariyana Prakashan, Delhi, 1971, P. -201
6. Chaturvedi, Shyam, Madhukar, The Indian Presidency: A Re-Appraisal RBSA Publishers, Jaipur, 2002, P.-249
7. Nirmal, Anjali, The Indian President, Pointer Publishers, Jaipur, 1997, P.-178
8. पंवार, ओमप्रकाश, गठबंधन सरकारें एवं राष्ट्रपति की भूमिका : 1989–2009, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृ0 60
9. मुंशी, के.एम., इंडियन कॉस्टीटयूशनल डाक्यूमेंटस, वॉल्यूम (i) भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1967, पृ0 17
10. पंवार, ओमप्रकाश, गठबंधन सरकारों एवं राष्ट्रपति की भूमिका , पूर्वोक्त, पृ0 61, 62

11. वही, पृ0 64
12. मुंशी, के.एम., दी प्रेसीडेट अण्डर दी इंडियन कॉस्टीट्यूशन, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1963, पृ0 35, 36
13. पंवार, ओमप्रकाश, गठबंधन सरकारों एवं राष्ट्रपति की भूमिका, पूर्वोक्त, पृ0 68
14. जैन, पुखराज, विश्व के प्रमुख संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2006, पृ0 83, 84
15. Ahuja, M.L., Indian Presidency and the successive Presidents, Icon Publications Pvt. Ltd., 2003, P.-40